International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 325-327

भारत में मध्यवर्ग का उदय

किशन सिंह यादव
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

जब सामाजिक, आर्थिक संबंध बदलते है तो तमाम तरह की सामाजिक वैज्ञानिक अवधारणाओं को जन्म देते हैं। इस तरह ये अवधारणाएँ सामाजिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के संघात से निर्मित होती हैं। इस तरह मध्यवर्ग की अवधारणा का निर्माण भी समाज व्यवस्था में आए इन्हीं परिवर्तनों का ही प्रतिफलन है।

मध्यवर्ग को समझने के लिए वर्ग विभाजन के आधार को समझना जरूरी है। अतः हम पहले वर्ग पर विचार करेंगे। वर्ग शब्द एक व्यवहारिक संज्ञा है, जिसका प्रयोग मनुष्यों के उस समूह के लिए किया जाता है जिनमें किसी प्रवृत्ति की समानता पायी जाती है। जब समाज का वर्गों में विभाजन किया जाता है तो इस विभाजन के केंद्र में यह प्रवृत्तिगत समानता रही है। वर्ग (क्लास) शब्द के इतिहास पर विचार करते हुए रेमंड विलियम्स ने बताया है कि ''अपने शुरुआती दौर में यह शब्द पौधों के वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त होता था, तब तक सामाजिक स्तर के लिए इस शब्द का प्रयोग नहीं होता था। सामाजिक स्तरीकरण (निम्नवर्ग, मध्यवर्ग, उच्चवर्ग, श्रमिक वर्ग आदि) के लिए इस शब्द का प्रचलन 1770 ई. से 1840 ई. के बीच में हुआ।''[1]

मार्क्सवादी विश्लेषण के व्यापक प्रभाव के चलते बाद में वर्ग शब्द का सामाजिक–आर्थिक आशय ही प्राथमिक हो गया। इस अर्थ में किसी वर्ग शब्द का सामाजिक–आर्थिक आशय ही प्राथमिक हो गया। इस अर्थ में किसी वर्ग का मतलब कुछ समान आर्थिक स्थितियों अथवा हितों वाले व्यक्तियों का समुच्चय है। एक ही वर्ग के लोगों में कुछ ऐसी चीजें होती है जो उन्हें एक साथ रखकर देखने के लिए बाध्य करती है।[2]

अंग्रेजों के भारत में उपनिवेश स्थापित करने से पहले भी एक आर्थिक दृष्टि से समर्थ वर्ग था, जो प्राक् औपनिवेशिक भारत में मध्यकालीन दौर के अंतिम समय में निर्मित हुआ था। यह वह समय था जब यूरोपीय व्यापारी भारत व्यापार करने के उद्देश्य से आते थे। व्यापार में सहायता के लिए उन्हें ऐसे लोगों की जरूरत थी जो उनसे जुडते और व्यापार में उनकी मदद करते। यूरोपीय व्यापारियों की इसी जरूरत को पूरा करने के लिए भारत में एक नये वर्ग का उदय हुआ जो यूरोपीय व्यापारियों को यहाँ के उत्पादकों का माल दिला सकें। इस तरह से यह वर्ग यूरोपीय व्यापारियों और भारतीय उत्पादकों के बीच सेतु का काम करता था।

ऐसे वर्ग का उदय सोलहवीं सदी में हुआ। शुरुआत में दलाल और उपदलालों के रूप में यह वर्ग उभरा और 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक इस वर्ग की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई।[3]

इसी समय में कुछ और पेशों से जुड़े लोग अस्तितव में आए जिनमें ठेकेदार, सर्राफ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी से जुड़े एजेन्ट, सहायक, नौकर, दुभाषिए आदि प्रमुख है। समय बदलने के साथ ये भी छोटे स्तर के व्यापार के कार्यों में लग गये। यही लोग औपनिवेशिक भारत में पैदा हुए वर्ग का आधार बनते है जिसे आज हम आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग कहते है। आधुनिक मध्यवर्ग औपनिवेशिक भारत में पैदा हुआ और वह राष्ट्रीय अर्थतंत्र का अंग होने के साथ–साथ अपने वर्ग की 'सम्मिलित–स्वार्थ चेतना' से भी संचालित था इसलिए इसके अपने संगठन भी थे। जबकि मध्ययुगीन मध्यवर्ग में वर्ग चेतना का अभाव था।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि वह कौन–सी परिस्थितियाँ थी जिनमें भारतीय मध्यवर्ग का विकास हुआ? भारतीयों का यूरोपीय व्यापारियों से पुराना संबंध था जिससे इस दौरान उन्हें भारतीय लोगों, समाज तथा परिस्थितियों को समझने का काफी अवसर मिला। आगे चलकर जब भारत पर अंग्रेजों का शासन हो गया तो उन्होंने सौदेबाजी के लिए बिचौलियों से काम लेने की बजाय उनकी जगह वेतन भोगी कर्मचारी रख लिए। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति सम्पन्न हो चुकी थी, चूँकि भारत उनका उपनिवेश था, ऐसे में वे औद्योगिक क्रांति की प्रक्रिया को यहाँ भी अपनाना चाहते थे, सर्वप्रथम बंगाल में शासन था जो वहीं पर उद्योग लगाए जिनमें मशीनों द्वारा उत्पादन होता था। इस प्रक्रिया से इंग्लैण्ड को यह फायदा हुआ कि कच्चा माल भी भारत का, काम करने वाले लोग भी भारत के और खरीददार भी भारतीय लेकिन मुनाफा इंग्लैण्ड को। इन उद्योगों को चलाने के लिए बिजली की भी व्यवस्था हुई। संचार प्रणाली एवं परिवहन की भी।[4]

इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए पुरानी व्यवस्था में बदलाव जरूरी था। इसलिए अंग्रेजों ने बिजली, संचार व परिवहन के अतिरिक्त छापे खाने द्वारा पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरंभ किया। हालाँकि यह शुरुआत अंग्रेजों ने अपने हित के लिए की तथापि इससे एक सामाजिक गतिशीलता पैदा हुई। प्राचीन भारतीय गाँव अपनी आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएँ खुद पैदा किया करते थे। वे एक तरह के आत्मनिर्भर समुदाय थे। इस आत्मनिर्भरता के संबंध में मार्क्स का कहना था आत्मनिर्भरता भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता का सबसे बड़ा कारण थी।[5]

भारत एक कृषि प्रधान देश है ओर उस समय भी अर्थ का प्रमुख स्त्रोत कृषि ही थी। अंग्रेजों द्वारा नयी भूमि व्यवस्था लागू की गयी। नए जमींदारों का निर्माण किया गया यह नए ढंग का जमींदार वर्ग

---

1 रेमण्ड विलियम्स – की वर्डस : वोकेवलरी ऑफ कल्चरल एवं सोसाइटी, पृ. 60–61.

2 कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिंक एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, पृ. 77.

3 ताराचन्द – भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खण्ड–2, पृ. 106.

4 सब्यसाची भट्टाचार्य – आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (हिन्दी अनुवाद – डॉ. माहेश्वर), पृ. 25–26.

5 कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिंक एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड–1, भाग–2, पृ. 257–258.

था जो मूलतः मुनाफाखोरों, व्यापारियों और बनियों से मिलकर बना था।[6] ये जमींदार वर्ग नए मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा था। अंग्रेजों ने अपने हित के लिए सबकुछ किया समय के साथ बंगाल के अलावा अन्य जगहों पर भी मशीनें बनाने वाले कारखाने और उद्योग धंधे खुलते गए। आवागमन की सुविधा की वजह से व्यक्ति दूसरी जगह की परिस्थितियों से परिचित हो सकता था। इससे क्षेत्रीयता की संकुचित भावना खत्म हुई। परिवर्तनों के कारण भारतीय समाज में आई इस गतिशीलता ने नई परिस्थितियाँ पैदा की यह पूरी व्यवस्था भारतीय संसाधनों का दोहन करने के लिए बनायी गयी थी और यह इतने व्यापक स्तर पर फैल गयी कि अंग्रेजों को इसे संभालने के लिए प्रशासन तंत्र की आवश्यकता महसूस हुई साथ ही अंग्रेजों में यह डर भी समाया हुआ था कि औपनिवेशिक नीतियों के खिलाफ जनता विद्रोह न कर बैठे। ऐसी स्थिति में उन्होंने ऐसे लोगों की तलाश की जो ऐसी स्थितियों से निपटने में अंग्रेजों का साथ दे और जनविद्रोह का दमन करने में सहयोग दे। भारतीय सिविल सेवा इसी का परिणाम थी। अंग्रेजी हितों को धारण करने वाले व्यक्तियों के निर्माण के लिए उन्होंने अंग्रेजी की एक पूरी शिक्षा नीति तैयार की।[7]

उद्योग–धंधों में सस्ते तकनीशियनों की आवश्यकता पूर्ति और उद्योग–धंधों के विकास के लिए आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की जानकारी जरूरी थी, इसलिए अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा प्रदान की। इस शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजों के हितों को सुरक्षित रखना था न कि भारतीय समाज को सभ्य और शिक्षित बनाना। यही कारण है कि यह शिक्षा मध्यवर्ग तक ही सीमित रही। समाज के आम लोगों तथा उपेक्षित लोगों तक यह कभी नहीं पहुँची। अंग्रेजी हितों की रक्षा तथा विरोधियों को सजा दिलाने के लिए न्यायालय खोले गए बड़े न्यायालय के बड़े पदों जज तथा वकील अंग्रेज थे। देश में बहुत–सी जगहों पर छोटे–छोटे न्यायालय खोले गए जिनके लिए पर्याप्त वकील हिन्दुस्तानियों में से हो सकते थे। वे ऐसे कानून के जरिए वकालत करते थे, जो अंग्रेजी हितों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। खुद अंग्रेजों का इलाज तो महँगे और भरोसेमंद अंग्रेजी डॉक्टर करते थे लेकिन उनके शार्गिदों के इलाज के लिए भी अंग्रेजी चिकित्सा की आवश्यकता थी। ऐसे बहुत–से भारतीय भी अंग्रेजी चिकित्सा की पढ़ाई कर चिकित्सक बने। इन सबसे अलग ऐसे सभी व्यक्तियों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने के लिए जिन अध्यापकों की आवश्यकता थी, उन्हें बनाने के लिए भी अंग्रेजी शिक्षा जरूरी थी। इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक बुद्धिवादी मध्यवर्ग का उदय हुआ। इसके साथ ही अंग्रेजों और भारतीयों के बीच सेतु कार्य भी शिक्षा प्राप्त वही व्यक्ति कर सकता है जो भारतीयों की मानसिकता से ज्यादा परिचित है।

भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा दिए जाने के संबंध में ए.आर. देसाई ने ठीक लिखा है कि ''भारत में अंग्रेजों की राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक आवश्यकताएँ थी, मूलतः उन्हीं के कारण भारत में आधुनिक शिक्षा की शुरूआत हुई।''[8] अंग्रेजों ने भारतीयों के हितार्थ इस मध्यवर्ग को पैदा नहीं किया था, बल्कि यह परिस्थितियों के दबाव की देन था।

अंग्रेजी शिक्षा के नकारात्मक प्रभाव कहीं अधिक गहरे थे। पहला प्रभाव यही पड़ा कि वे एक तरह के हीनताबोध से ग्रस्त हो गए, जिससे उबरने के लिए उन्होंने अंग्रेजों के अनुकरण को ही आदर्श मान लिया। जिसका प्रभाव यह हुआ कि बहुत से लोगों ने अपनी मातृभाषा तक का प्रयोग छोड़ दिया। उन्होंने किसी भी तरह के आलोचनात्मक विवेक का सहारा नहीं लिया। ऐसे लोग देश या समाज के हित में क्या करते। इनकी दृष्टि में पाश्चात्य संस्कृति बेहतर थी और अपनी परंपरा को हेय दृष्टि से देखना इनका फैशन था।

लेकिन ऐसा नहीं है कि सारा मध्यवर्ग आलोचनात्मक विवेक से रहित था। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीयों में से कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने भले और बुरे के अपने आलोचनात्मक विवेक को न सिर्फ बनाये रखा, बल्कि उसे और भी विकसित किया। ऐसे लोगों की दृष्टि में पाश्चात्य संस्कृति के सकारात्मक पक्ष ग्रहणीय थे। ऐसे मध्यवर्गीय लोगों में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, विद्या सागर आदि महत्वपूर्ण थे जिन्होंने ब्रह्मसमाज, आर्य समाज जैसे संगठनों का निर्माण किया और समाज सुधार के ढेर सारे आन्दोलन चलाए।

''1947 में आजादी तो मिल गयी, लेकिन औपनिवेशिक युग के दौरान निर्मित संस्थाओं का कुछ नहीं बिगड़ा। ब्रिटिश शासन की सरपरस्ती में अपनी चौदराहट जमा चुके मध्यवर्ग और उच्चवर्गों के वर्चस्व एवं राष्ट्रीय आन्दोलन पर उनके नेतृत्व की प्रकृति कुछ इसी किस्म की थी कि उसने इन संस्थाओं के बने रहने के लिए रास्ता साफ कर दिया। प्रशासन का भारतीयकरण तो हुआ, लेकिन उसे मामूली परिवर्तनों के साथ ही स्वीकार कर लिया गया।''[9] इस तरह मध्यवर्ग ने अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिए अपने अनुकूल परिस्थिति बनाये रखा। उसका ध्यान निम्नवर्ग के विकास पर कम अपने पर ज्यादा था। अंग्रेजों के समय की न्याय–प्रणाली को भी बिना किसी बदलाव के स्वीकार कर लिया गया और मध्यवर्ग की सर्वोच्च महत्वाकांक्षा सिविल सर्विस बनी रही।

आगे चलकर 1967 के आम चुनाव के बाद कांग्रेस का राजनीतिक एकाधिकार भंग हो गया। सत्ता हासिल करने के लिए जोड़–तोड़ की राजनीति शुरू हो गयी। मध्यवर्ग ने देखा महत्वपूर्ण व्यक्ति बिना किसी हिचक के पाला बदल रहे है। इस समय देश के अनेक भागों में अवसरवाद और धनलोलुपता का नंगा नाच हुआ। उसूलों को ताक पर रखकर गठजोड़ बनाये और तोड़े गए। सत्ता हासिल करने के लिए नेताओं को किसी हद तक जाने में कोई संकोच नहीं रहा। भारत के संदर्भ में यह भी एक सच्चाई है ''भारत वर्ष में राजनीतिक घटनाएँ मान्यताओं के निर्धारण में हमेशा ही बेहद प्रभावकारी भूमिका निभाती रही है।''[10] राजनीतिक क्षेत्र में घट रही घटनाओं का प्रभाव मध्यवर्ग पर भी पड़ा। ऐसे मध्यवर्गीय लोगों और उनकी समस्याओं की अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य में भी देखी जा सकती है। अब मध्यवर्ग के चरित्र और संरचना में परिवर्तन के साथ ही उसकी दुनिया से आदर्शवाद तिरोहित हो गया। उसने गरीबों की फिक्र करना बंद कर दिया और भ्रष्टाचार को मान्यता दे दी।[11]

1969 ई. में इंदिरा गाँधी द्वारा किया गया बैंकों का राष्ट्रीयकरण इन लोगों की महत्वाकांक्षा पूरी करने में काफी मददगार साबित हुआ। सस्ते ऋण पर पूँजी उपलब्ध हो जाने और नैतिकता का ख्याल न होने के कारण मध्यवर्ग द्वारा अनावश्यक समझी जाने वाली वस्तुएँ खरीदी जाने लगी। नैतिकता और आदर्शवाद से कार, टी.वी.,

---

6 सब्यसाची भट्टाचार्य – आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (हिन्दी अनुवाद – डॉ. माहेश्वर), पृ. 49–50.

7 पवन कुमार वर्मा – 'भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान' (हिन्दी अनुवाद – अभय कुमार दुबे), पृ. 20–21.

8 ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (हिन्दी अनुवाद प्रयाग दत्त त्रिपाठी), पृ. 112.

9 डॉ. पवन कुमार वर्मा – 'भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान' (हिन्दी अनुवाद – अभय कुमार दूबे), पृ. 38.

10 डॉ. पवन कुमार वर्मा – 'भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान' (हिन्दी अनुवाद – अभय कुमार दूबे), पृ. 38.

11 वही, पृ. 90.

म्यूजिक सिस्टम और फारेनमाल नहीं खरीदा जा सकता था लेकिन कथित संस्कारवान मध्यवर्ग यही सब खरीदना चाहता थ। अब जो परिस्थिति बनी उसमें यह सब कुछ खरीदना संभव हो गया।

इस चर्चा के बाद यह कहा जा सकता है कि आजादी के शुरूआती दिनों और बाद के दिनों में भारतीय मध्यवर्ग में एक खास अन्तर यह दिखाई देता है कि पहले का मध्यवर्ग स्वाधीनता आन्दोलन के प्रभाव के कारण जहाँ सार्वजनिक नैतिकता और आदर्श का एक दबाव महसूस करता था जिससे उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में बाधा भी थी, वहीं बाद के मध्यवर्ग के सामने नैतिकता और आदर्श का दबाव नहीं रह गया और वह अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए किसी हद तक जा सकता है।

संदर्भ

1. रेमण्ड विलियम्स – की वर्डस : वोकेवलरी ऑफ कल्चरल एवं सोसाइटी, फोटाना प्रेस, लंदन, संस्करण–1983.
2. कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिंक एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड–1, भाग–1, प्रगति प्रकाशन, मास्को, संस्करण–1978.
3. ताराचन्द – भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय–भारत सरकार, संस्करण–1969.
4. सब्यसाची भट्टाचार्य – आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (हिन्दी अनुवाद – डॉ. माहेश्वर), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं आवृत्ति–2004.
5. पवन कुमार वर्मा – 'भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान' (हिन्दी अनुवाद – अभय कुमार दुबे), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1999.
6. ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (हिन्दी अनुवाद प्रयाग दत्त त्रिपाठी)।